CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री महावीर-जिन-वचनामृत

द्वादशांगवाणी विमल चतुरानुयोग आधार ।
आत्मदीप ज्योति अमल, ज्ञान प्रकाशन सार ।।

सम्पादक :
डा० ज्योति प्रसाद जैन

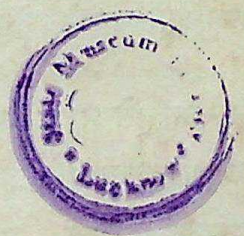

मूल्य १ रु०

5275

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

णमो अरहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच-णमोयारो सव्व-पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ।।

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं,
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णतं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

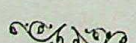

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

卐 महावीर वचनामृत 卐

卐

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं

धर्म सर्वोत्कृष्ट मंगल है—सबका कल्याणकर्त्ता है।

लोगस्ससारं धम्मो

लोक का—मनुष्य-जीवन का सार धर्म है।

धम्मो वत्थु-सहावो

वस्तु-स्वभाव का नाम धर्म है—जो जिस पदार्थ का स्वभाव है, वही उसका धर्म है।

समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए

श्रेष्ठ महापुरुषों ने समभाव में धर्म बताया है।

मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो

मोह एवं क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम ही धर्म है।

दुविहे धम्मे—सुयधम्मे चेव चरित्तधम्मे चेव

धर्म के दो रूप हैं—श्रुत अर्थात ज्ञान या तत्वज्ञान और चारित्र अर्थात् आचरण।

रयणत्तय च धम्मो

और, धर्म रत्नत्रय (समीचीन श्रद्धान, ज्ञान एवं आचरण) रूप है।

चत्तारि धम्मदारा—खंती मुत्ती अज्जवेमद्दवे

धर्म के चार द्वार हैं—क्षमा, शौच (संतोष), सरलता और मृदुता।

दंसणमूलो धम्मो

धर्म का मूल दर्शन (समीचीन दृष्टि या सम्यक्त्व) है।

तच्चरुइ सम्मत्तं

तत्व में रुचि होने का नाम सम्यक्त्व है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावेण सद्दहंतस्स सम्मत्तंतु वियाहियं

ज्ञान (भाव) पूर्वक तत्त्वों का श्रद्धान करने पर सम्यक्त्व प्रकट होता है।

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए

ज्ञान समस्त पदार्थों को प्रकाशित (प्रत्यक्ष) करता है।

णाणं णरस्स सारं, सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं

ज्ञान मनुष्य का सार है, और सम्यक्त्व भी मनुष्य का सार है।

चारित्तं खलु धम्मो, जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥

परमार्थ से चारित्र ही धर्म है, और वह समत्व रूप बताया गया है। आत्मा का मोह-क्षोभ विहीन परिणाम ही समत्व या समता भाव है।

चरणं हवइ सधम्मो, धम्मो सो हवइ समभावो

चारित्र स्वधर्म (आत्मधर्म) है। आत्मा का समभाव ही चारित्र कहलाता है।

नत्थिचरित्तं सम्मतविहूणं

सम्यक्त्व के बिना चारित्र नहीं होता।

समवण्णा होइ चारित्तं

ज्ञान और दर्शन (सम्यक्त्व) के समायोग से चारित्र होता है।

जो पुण चरित्तहीणो किं तस्स सुदेण बहुएण

जो चारित्र से हीन है, उसके बहुत शास्त्रों के जानने से भी क्या लाभ है।

पाणिवह-मुसावाद-अदत्त-मेहुण-परिग्गहा विरदो।
एस चरित्ताचारो पंचविहो होदि णादव्वो॥

प्राणीवध (हिंसा), मृषावाद (झूठ), अदत्तग्रहण (चोरी), मैथुन और परिग्रह, इन पांचों से विरक्त होना पाँच प्रकार का चारित्र है।

पाणे य नाइवाएज्जा, अदिन्नं पि य नायए।
साइयं न मुसंवूया, एस धम्मे वुसीमओ॥

किसी भी प्राणी की हिंसा न करे, किसी की भी बिना दी हुई वस्तु न ले, विश्वासघातक असत्य न बोले— यह आत्मनिग्रही जनों का धर्म है।

खमादि भावो य दहविहो धम्मो

क्षमादि भावरूप दश प्रकार का धर्म है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खंतीमद्दवअज्जवलाघव तवसंजमो अकिंचणदा ।
तह होइ बम्हचेरं सच्चं चागो य दस धम्मा ।।

क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य, ये दस धर्म हैं ।

अहिंसाहिलक्खणो धम्मो, जीवाणं रक्खणो धम्मो

धर्म का लक्षण अहिंसा है, जीवों की रक्षा करना धर्म है ।

धम्मो दयाविसुद्धो

धर्म दया से विशुद्ध होता है ।

विणओ धम्मस्स मूलं

धर्म का मूल विनय (मानरहित होना) है ।

जइ जर-मरण-करालियउ, तो जिय धम्म करेहि ।
धम्म रसायणु पियहि तुहुँ, जिमि अजरामर होहि ।।

हे जीव ! यदि तू जरा-मरण से भयभीत है तो धर्म कर, धर्म-रसायन का पान कर, जिससे तू अजर-अमर हो सके ।

धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइं ।
धम्मु ण मढिय पएसिं, धम्मु ण मत्था-लुंचियइं ।।

बहुत पढ़लेने से ही धर्म नहीं होता, पोथियों और पिच्छी से भी धर्म नहीं होता, मठ में रहने से भी धर्म नहीं होता, और शिर का केशलौंच करने से भी धर्म नहीं होता ।

रायरोस वे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ, जो पंचम-गइ णेइ ।।

राग और द्वेष को छोड़ कर अपनी आत्मा में ही निवास करने को जिनदेव ने 'धर्म' कहा है, और यही धर्म निर्वाण प्राप्त कराता है ।

धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई

शुद्ध-पवित्र आत्मा में धर्म निवास करता है ।

विवेगे धम्म माहियं

मनुष्य का धर्म उसका सद्असद् विवेक है ।

जरामरणवेगणं बुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठाय गई सरणमुत्तमं ।।

जरा और मृत्यु के वेगवान प्रवाह में बहते हुए जीवों को धर्म ही एक मात्र द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है और उत्तम शरण है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुसग्गे जह ओसबिन्दुए थौवं चिट्ठइ लम्बमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।

मानव जीवन कुशा की नोक पर स्थित ओस की बूंद की तरह क्षणस्थायी हे, अतएव हे गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर ।

असंक्खयं जीविय, मा पमायए

यह जीवन असंस्कृत है, अत: प्रमाद मत कर ।

सव्वतो पमत्तस्स भयं, सव्वतो अपमत्तस्स नत्थि भयं

प्रमत्त (प्रमादी) व्यक्ति को सर्वत्र भय है, अप्रमादी को कहीं भी कोई भय नहीं होता ।

उट्ठिए, णो पमायए

उठो ! प्रमाद मत करो ।

धम्मेण होदि पुज्जो, धम्मत्थस्स वि णमंति देवावि

धर्माचरण करने से ही व्यक्ति पूज्य होता है, धर्मात्मा व्यक्ति को देव भी नमस्कार करते हैं ।

एओचेव सुभो णवरि सव्वसोक्खायरो धम्मो

एक धर्म ही शुभ है, पवित्र है, और वही सब सुखों का देने वाला है ।

तूरह धम्मं काउं

(अतएव) शीघ्र ही धर्म करो, धर्म को अपनाओ—धर्माचरण करो ।

तत्थिमं पढमं ठाणंमहावीरेण देसियं ।
अहिंसा निउणं दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो ।।

तीर्थंकर महावीर ने अहिंसा को समस्त धर्मस्थानों में प्रथम स्थान देकर उसका उपदेश दिया । सब जीवों के प्रति संयम रखना अहिंसा है ।

धम्ममहिंसा समं नत्थि

अहिंसा के समान अन्य धर्म नहीं है ।

असुभो जो परिणामो सा हिंसा

अशुभ परिणाम ही हिंसा है ।

रागादीणमणुप्पा अहिंसकत्तं त्ति देसियं समए ।
तेसिं च उप्पत्ती हिंसेत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठा ।।

रागद्वेष आदि का उत्पन्न न होना अहिंसा बताया है, रागादिक की उत्पत्ति होना हिंसा है, ऐसा जिनदेवों ने निर्देश किया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

णत्थिदु अहिंसगो णाम होदि वायादिवधहेतु

हिंसा से विरत न होना, अथवा मैं प्राणिघात करूंगा, ऐसे विचार रखना हिंसा है।

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा

कोई जीव मरे या जीवे, यह हिंसा या अहिंसा नहीं, जो यत्नाचारपूर्वक नहीं बर्तता उसके निश्चय हिंसा है—अयत्नाचार का नाम ही हिंसा है।

पादोसिय अधिकरणिय कायिय परिदावणादिवादाए।
एदे पंचपओगा किरियाओं होंति हिंसाओ॥

द्वेष करना, हिंसा के उपकरणों को ग्रहण करना, दुष्टभाव से शरीर की चेष्टाएँ करना, अन्य को दुःख पहुँचाने वाली क्रिया करना, और किसी के प्राणों का घात करना, इन पांच प्रकार के प्रयोगों को हिंसा की क्रिया कहते हैं।

हिंसाविरइ अहिंसा

हिंसा से विरत होना अहिंसा है।

जह ते ण पियं दुक्खं तहेव तेंसिपि जाण जीवाणं

जिस प्रकार तुम्हें दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही अन्य जीवों के बारे में जानो।

जहमम न पियं दुक्खं, जाणिय एमेव सव्वजीवाणं।
न हणइ न हणावेइ अ, समणइ तेण सो समणो॥

जैसे मुझे दुःख अच्छा नहीं लगता, वैसे ही कोई भी अन्य प्राणी दुःख नहीं चाहता, यह जानकर जो किसी की भी हत्या न करता है, और न कराता है, ऐसा समदृष्टि व्यक्ति ही श्रमण है।

हत्थिस्स य कुंथुस्स य समेजीवे

हाथी और चींटी समानरूप से जीव हैं।

आय तुले पयासु

सभी प्राणियों को अपने समान समझो।

सव्वेसिं जीवियं पियं

सभी को अपना जीवन प्रिय है।

सव्वे जीवावि इच्छंति जीविउं, न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं॥

सभी जीव जीवित रहने की इच्छा रखते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, इसीलिए निर्ग्रन्थ गुरुओं ने प्राणिवध को घोर पाप कहा और उसका निषेध किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुमंसि नाम सच्चेवं जं हंतव्वंति मन्नसि,
तुमंसिनामसच्चेवं जं अज्जावेयव्वंति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेवं जं परियावेयव्वंति मन्नसि,
एवं जं परिधितव्वंति मन्नसि, जं उद्दवेयव्वंति मन्नसि,
अं जू चेय पडिबुद्धजीवी तम्हा न हंता न विघायए,
अणुसवेयणमप्पाणेणं णं हन्तव्वं नाभिपत्थए ।।

जिसे तुम मारना चाहते हो, वह भी तुम्हारे जैसा सुख-दुःख का अनुभव करने वाला प्राणी है। जिस पर शासन करना चाहते हो, वह भी तुम्हारे जैसा प्राणी है। जिसे दुःख पहुँचाना चाहते हो, वह भी तुम्हारे जैसा प्राणी है। जिसे अपने वश में करने की इच्छा करते हो, वह भी तुम्हारे जैसा प्राणी है। जो सज्जन ऐसा जान कर विवेक पूर्वक जीवन बिताते हैं, वे न तो किसी का घात स्वयं करते हैं और न दूसरों से कराते हैं। जो हिंसा करता है, उसका फल उसे भोगना पड़ता है। अतएव किसी भी प्राणी की हिंसा की कामना मत करो।

सयं तिवायए पाण, अदुबडन्नेहिं घायए।
हणन्तं वाणुजाणाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो ।।

जो स्वयं प्राणिहिंसा करता है, दूसरों से कराता है, अथवा करने वालों की अनुमोदना करता है, वह संसार में अपने लिए वैर ही बढ़ाता है।

से हु पन्नाणमंते बुद्धे आरंभोवरए

जो हिंसक प्रवृत्ति से विरत रहता है वही ज्ञानी है, वही बुद्ध है।

को धम्मो, जीवदया

धर्म क्या है? जीवों पर दया करना।

सव्वेहि भूएहिं दयाणुकंपी

सभी प्राणियों पर दया करनी चाहिये।

दयासमो न य धम्मो, अन्नसमं नत्थि उत्तमंदाणं।
सच्चसमा न य कित्ती, सीलसमो नत्थि सिंगारो ।।

दया समान धर्म नहीं है, अन्नदान से उत्तम दान नहीं है, सत्य समान कीर्त्ति नहीं, और शील से अधिक श्रेष्ठ कोई श्रंगार नहीं है।

जीववहो अप्पवहो, जीवदया होइ अप्पणोहुदया

किसी भी प्राणी का घात करना स्वयं अपना ही घात करना है। दूसरों पर दया करना स्वयं अपने ऊपर दया करना है।

असंगिहीय परिजणस्स संगिण्हणयाए अब्भुट्ठेयव्वंभवइ

अनाश्रित और असहाय व्यक्तियों को आश्रय एवं सहयोग-सहायता देने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणयाए अब्भुट्ठेयव्वंभवइ

रोगी जनों को निरोग करने के लिए उनकी सेवा सुश्रुषा परिचर्या उत्साह एवं तत्परता के साथ करनी चाहिये ।

समाहिकारएणं तमेव समाहिं पडिलब्भई

जो दूसरों को सुख देने का प्रयत्न करता है, वह स्वयं भी सुख पाता है ।

वेयावच्चेण तित्थयरनामगोयं कम्मं निबंधेइ

सेवाधर्म का पालन करने से तीर्थंकर पद प्राप्त होता है ।

जो करेइ सो पसंसिज्जइ

जो जनसेवा करता है, वह प्रशंसित होता है ।

भमइ जए जसकित्ती सज्जणसुइ-हियय-णयण-सुहजणणी ।
अण्णेविय होंतिगुणा विज्जावच्चेण इहलोए ।।

सेवा करने से सज्जनों के कानों, नेत्रों और हृदय को सुख देने वाली कीर्ति जग में फैल जाती है तथा अन्य अनेक गुण इस लोक में प्राप्त होते हैं ।

सव्वं जगं तु समयाणुपेही

जगत के सभी प्राणियों को समभाव से देखो ।

मेत्तिं भूएसुकप्पए

सभी जीवों के प्रति मित्रता भाव रखो ।

सव्वपाणा न हीलियव्वा न निंदियव्वा

किसी भी प्राणी का न तिरस्कार करो, न निंदा करो ।

जीवोकसायबहुलोसंतो जीवाण घायणं कुणइ

अधिकतर लोग क्रोध-मान-माया-लोभ:आदि कषायों से युक्त होते हैं । कषाय से ही हिंसा उत्पन्न होती है ।

कोहोपीइ पणासइ, माणोविणय णासई ।
माया मित्ताणि णासइ, लोभो सव्व विणासणे ।।

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय समाप्त कर देता है, माया (छलकपट) मैत्री की नाशक है और लोभ सर्व विनाशक है ।

अहेवयन्ति कोहेण, मानेण अहमागई ।
मायागइ पुडिवग्घाओ, लोहाओ दुहओभयं ।।

क्रोध मनुष्य का पतन करता है, मान उसे अधमगति में पहुँचाता है, माया सद्गति का नाश करती है, और लोभ इसलोक एवं परलोक में महान भय का कारण होता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकसायतु चरित्तं, कसायवसगदो असंजदो होदि ।
उवसह जम्हि काले, तज काले संजदो होदि ।।

कषायरूप विकारों का अभाव ही चारित्र है। जो कषायों के वशीभूत होता है, वह असंयमी होता है। जिस समय कषाय विकार उपाशान्त हो जाते हैं, तभी संयमभाव प्रकट होता है।

तं वत्थुं मुव्यं जं पडिउपज्जये कसथिग्गी ।
तं वत्थुं मल्लिरज्जो जत्थुवसम्मो कसायाणं ।।

जिस वस्तु या स्थिति से कषाय उत्पन्न हो उसे छोड़ना चाहिए, और जिससे कषाय शान्त हों, उसका सम्बन्ध मिलाना चाहिये।

णत्थि अणूदो अप्पं, आयासादो अणूणयं णत्थि ।
जह तह जाण महल्लं ण वयमहिंसासमं अत्थि ।।

इस संसार में जिस प्रकार परमाणु से छोटी कोई वस्तु नहीं है और आकाश से बड़ा कोई द्रव्य नहीं है, उसी प्रकार अहिंसा से बड़ा कोई व्रत नहीं है।

सव्वेसिमासमाणं हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं ।
सव्वेसिं वदगुणाणं पिंडोसारो अहिंसादु ।।

अहिंसा (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि) सब आश्रमों का हृदय है, समस्त शास्त्रों का गर्भ है, और समस्त व्रतों एवं गुणों का एकत्र सार है।

उच्चायं सीलेसुवदेसु य अहिंसा

यह अहिंसा अखिल शीलों (सदाचारों) और व्रतों में सर्वोच्च है।

जीवेहिंसतस्सहु सव्वेवि णिरत्थया होंति

हिंसक व्यक्ति के समस्त धर्म-कर्म निरर्थक होते हैं।

अहिंसाए विणा ण सीलाणि ठंति सव्वाणि

अहिंसा के बिना कोई भी शील (धर्म, सदाचार) स्थित नहीं रह सकता।

अत्ताचेव अहिंसा

शुद्ध आत्मा ही अहिंसा है।

एसा सा भगवइ

ऐसी यह भगवती अहिंसा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिहर असंतवयणं

असत्य भाषण का त्याग करना सत्य है।

हिंसा-वयणं ण वयदि, कक्कस-वयणं पि जो ण भासेदि।
णिट्ठुरवयणं पि तहा ण भासदे गुज्झ-वयणं पि॥
हिदमिदवयणं भासदि संतोसकरं तु सव्व-जीवाणं।
धम्मपयासणवयणं अणुव्वदी होदि सो बिदिओ॥

जो सत्याणुव्रत का पालन करने वाला है, वह हिंसा के वचन नहीं कहता, कठोर वचन नहीं बोलता, निष्ठुर वचन नहीं कहता, दूसरे की गुप्त बात को प्रकट नहीं करता, हित-मित-सन्तोषप्रद और धर्म-प्रकाशक वचन बोलता है।

भासियव्वं हियं सच्चं

सदा हितकारी सत्य वचन बोलना चाहिये।

नापुट्ठोवागरेकिंचिपुट्ठो वा नलियं वए

बिना पूछे बोले नहीं, और पूछने पर असत्य न बोले।

नाइवेल वएज्जा

आवश्यकता से अधिक न बोले।

सच्चेण जगे होदि पमाणं

इस जगत में सत्य से ही मनुष्य प्रामाणिक होता है।

पापस्सागमदारं असच्चवयणं

असत्य वचन पाप के आगमन के द्वार हैं।

जलचंदणससिमुत्ताचंदमणी तह णरस्स णिव्वाणं।
ण करंति कुणइ जह अत्थजुयं हिदमधुरमिदवयणं॥

मनुष्य को जितना आनन्द सार्थक, हितकर, मित और मधुर वचन प्रदान करते हैं, उतना शीतल जल, चन्दन, चन्द्रमा, मुक्ता, चन्द्रकान्त मणि आदि पदार्थ भी नहीं पहुँचाते।

सच्चं लोगम्मि सारभूयं

संसार में सत्य ही सारभूत पदार्थ है।

तं सच्चं खु भगवं

सत्य ही निश्चय से भगवान है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अप्पणा सच्चमेसिज्जा

(अतः) आत्मा से सत्य की खोज करो।

अदिन्नमन्नेसु य णो गहेज्जा

किसी की किसी भी वस्तु को बिना उसके दिये हुए ग्रहण नहीं करना चाहिये।

लोभाविले आययई अदत्तं

लोभ के वश चोरी की प्रवृत्ति होती है।

चोरस्स णत्थि हियए दया च लज्जादमो व विस्सासो

चोर के हृदय में दया, लज्जा, दम (इच्छादमन) और विश्वास नहीं होते।

जो बहुमुल्लं वत्थुं अप्पय मुल्लेण णव गिण्हेदि।
वीसरियं पि ण गिण्हदि, लाहे थोवे पि तूसेदि॥

जो परदव्वं ण हरदि माया-लोहेण कोह-माणेण।
दिढचित्तो सुद्धमई अणुव्वई सो हवे तिदिओ॥

जो बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य में नहीं खरीदता, दूसरे की भूली हुई वस्तु को नहीं उठाता, थोड़े लाभ में ही सन्तुष्ट रहता है और छलकपट, लोभ, क्रोध एवं मान के वश दूसरे के द्रव्य का हरण नहीं करता, वह दृढ़ चित्तवाला शुद्धमति अचौर्याणुव्रत का पालन करने वाला होता है।

तं अप्पणा न गिण्हंति नो वि गिण्हावए परं।
अन्नं वा गिण्हमाण पि नाणुजाणति संजया॥

वह (इस प्रकार अन्याय का धन) न स्वयं ग्रहण करता है, न दूसरों को उसे ग्रहण करने की प्रेरणा देता है, और न उसे ग्रहण करने वालों की अनुमोदना करता है।

तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं

तपो में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तप है।

अणेगागुणा अहीणा भवंति एक्कंमि बंभचेरे

ब्रह्मचर्य का पालन करने से अनेक गुण मनुष्य के अधीन हो जाते हैं।

कामुम्मत्तो संतो डज्झदि य कामचिंताए

काम से उन्मत्त व्यक्ति का चित्त काम-चिन्ता से जलता रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कामपिसायग्गहिदो हिदमहिदं वा ण अप्पणो मुणदि

काम पिशाच के वश में हुआ व्यक्ति अपने हित-अहित को नहीं देखता, वह अपनी आत्मा को नहीं पहचानता।

दक्खो वि होई मंदो विसयपिसाओवहद चित्तो

अत्यन्त दक्ष व्यक्ति भी इन्द्रियों के विषय रूपी पिशाच से ग्रस्त हो कर मंदबुद्धि हो जाता है।

सीलं जेसु सुसीलं सुजीविदं माणुसं तेसिं

उन व्यक्तियों का जीवन ही जीवन है जिनका शील (आचरण) सुशील है।

सीलं मोक्खस्स सोवाणं

शील (ब्रह्मचर्य) मोक्ष का सोपान है।

जीवो बंभा जीवम्मि

जीव शब्द का अर्थ ही ब्रह्म है—बाह्य विषयों को छोड़कर आत्मा में चर्या करना ही ब्रह्मचर्य है।

न सो परिग्गह वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इव वुत्तं महेसिणा॥

महामुनि ज्ञातृपुत्र महावीर ने आसक्ति को परिग्रह कहा है, पदार्थों को परिग्रह नहीं बताया।

अब्भंतर बाहिरए सव्वे गंथे तुमं विवज्जेहि

भीतर और बाहर समस्त ग्रंथियों के उन्मोचन का नाम अपरिग्रह है।

अपरिग्गहो अणिच्छो

इच्छा रहित होना अपरिग्रह है।

इच्छाहु आगास समा अणंतिया

मनुष्य की इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हयो जस्स न होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हयो जस्स न किंचणाइं॥

जिसे मोह नहीं, उसका दुःख दूर हो गया। जिसे तृष्णा नहीं, उसका मोह नष्ट हो गया। जिसके लोभ नहीं, उसकी तृष्णा मिटगई। और जिसके पास परिग्रह (धन सम्पत्ति) नहीं, उस अकिंचन का लोभ समाप्त हो गया।

कामा दुरतिकम्मा

कामनाएँ दुर्लंघ्य हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खणमेत्त सोक्खा बहुकाल दुक्खा ।
पणाम दुक्खा अणिगाम सोक्खा ।।

कामनाओं की पूर्त्ति क्षणभर के लिए सुखदेने वाली और चिरकाल दुःख देने वाली है—प्रारम्भ में सुखद लगती है, उसका परिणाम दुःखपूर्ण होता है ।

नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि

परिग्रह के समान कोई जाल नहीं है ।

वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं

धन दुःख बढ़ाने वाला है ।

अत्थो अणत्थमूलं

अर्थ अनर्थ का मूल है ।

लाहा लोहो पवड्ढइ

लाभ से लोभ बढ़ता है ।

गंथंणिमित्तं घोरं परितावं

परिग्रह मनुष्य के लिए घोर परिताप का कारण है ।

गंथो भयं णराणं

परिग्रह के कारण मनुष्य में भय उत्पन्न होता है ।

णट्ठे गंथे य पुणो तिव्वं पुरिसो लहदि दुक्खं

परिग्रह (धन सम्पत्ति) के नाश से मनुष्य अत्यन्त दुःखी होता है ।

जीवस्स ण तित्ती अत्थि तिलोगे वि लद्धम्मि

(और) तीनों लोक का वैभव प्राप्त हो जाने पर भी मनुष्य की तृप्ति नहीं होती ।

ममाइ लुपइ बाले

ममत्व बुद्धि के कारण नासमझ लोग भटकते हैं ।

परिग्गहनिविट्ठाणं वेरं तेसिं पवड्ढई

जो परिग्रह में फँसे हुए हैं, वे वैर ही बढ़ाते हैं ।

माणी वि सहइ गंथणिमित्तं बहुयं वि अवमाणं

अभिमानी व्यक्ति भी धन के लिए घोर अपमान सहता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंथणिमित्तं कम्मं कुणइ अकादव्वयंपि णरो

धन के लिए मनुष्य न करने योग्य कार्य भी करता है।

संगो महाभयं

परिग्रह महान भय है।

विणीय तण्हो विहरे

(अतः) तृष्णा से मुक्त होकर विचरो।

धणेण किं धम्मधुराहिगारे

धन से क्या धर्म की गाड़ी चलती है ?

सव्वत्थ भगवया अनियाणया पसत्था

भगवान ने सर्वत्र निष्कामता को ही प्रशस्त-श्रेष्ठ कहा है।

अप्पाणमप्पणो परिग्गहं

वास्तव में तो अपना आत्मा ही अपना एकमात्र परिग्रह है।

अप्पा नई वेयरणी अप्पामे कूडसामली।
अप्पा कामदुहाधेणु अप्पा मे नंदनक्णं ।।

मेरी आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी और कूटशालमली वृक्ष है। और मेरी आत्मा ही स्वर्ग की कामदुग्धा धेनु तथा नंदनवन है।

अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ।।

आत्मा स्वयं अपने दुःख और सुख का कर्त्ता एवं भोक्ता है। वही सुमार्ग पर चलाने वाला अपना मित्र है, और कुमार्ग पर ले जाने वाला अपना शत्रु है।

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ अस्सिं लोए परत्थ य ।।

वास्तव में अपने आप को दमन करना अत्यन्त कठिन है, उसी का दमन करना चाहिए। अपने आप को दमन करने वाला व्यक्ति इसलोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

वरं मे अप्पा दंतो संजमेण तवेण य।
माऽहं परेहिं दम्मंतो बन्धणेहिं वहेहि य ।।

दूसरे लोग मेरा वध-बन्धनादि से दमन करें, इसकी अपेक्षा मैं संयम एवं तप द्वारा स्वयं अपना दमन करूँ, यह अच्छा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जे सहस्सं सहस्साण संगामे दुज्जये जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एष से परमो जओ ।।

जो वीर दुर्जय संग्राम में लाखों योद्धाओं को जीतता है, यदि उसके स्थान में वह एक अपनी आत्मा को जीतले तो उसकी वह विजय सर्वश्रेष्ठ विजय होगी ।

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेहए ।।

अपनी आत्मा के साथ युद्ध करो । बाहरी शत्रु के साथ युद्ध करने से क्या लाभ ? आत्मा द्वारा आत्मा को जीतने वाला–आत्मजयी ही पूर्ण सुखी होता है ।

पंचिन्दियाणि कोहं माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं ।।

पाँचों इन्द्रियों को, क्रोध-मान-माया-लोभ को, और सबसे अधिक दुर्जय अपनी आत्मा को जीतना चाहिए । एक आत्मा के जीतने पर सबकुछ जीत लिया जाता है ।

न तं अरी कंठछेत्ता करेइ, जं से करेइ अप्पणिया दुरप्पा ।
णाणं णरस्स सारं, सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं ।।

गला काटने वाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं करता, जितना कि दुराचरण में आसक्त अपनी आत्मा करती है । मनुष्य के लिए ज्ञान ही सार है, किन्तु ज्ञान से भी अधिक सार पदार्थ सम्यक्त्व–सच्ची आत्मश्रद्धा है ।

अहपुण अप्पाणिच्छदि धम्माइ करेदि निरवसेसाइ ।
तहवि ण पावदि सिद्धि संसारच्छा पुणो भणिदो ।।

जो व्यक्ति आत्मा को नहीं पहचानता, वह यद्यपि समस्त धार्मिक क्रियाएँ करता है, तथापि उसे सिद्धि नहीं मिलती और वह ससारी ही कहलाता है ।

उहरे य पाणे बुड्ढेय पाण त अन्तओ पासइ सव्वलोए ।
उव्वेहई लोगमिणं महन्तं बुद्धो पमत्तेसु परिव्वएज्जा ।।

मोहनिद्रा में मग्न मनुष्यों के बीच रहते हुए जो विश्व के समस्त प्राणियों को आत्मवत् देखता है, संसारी जीवन को अशाश्वत (क्षणभंगुर) समझता है, और अप्रमादी होकर संयम में रत रहता है, वही मुक्ति का सच्चा अधिकारी है ।

लाभालाभे सुहे-दुक्खे जीविए-मरणे वहा ।
समो निंदा-पसंसा सु तहा माणा-अवमाणवो ।।

लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण, प्रशंसा-निंदा, मान-अपमान में समत्व भाव रखना चाहिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संपिक्खए अप्पगमप्पएण

स्वयं को जानो, स्वयं को पहचानो।

अत्ताणमेव समभिजाणाहि

आत्मा को ही भले प्रकार जानो।

जो एगं जाणई सो सव्वं जाणई

जो एक (आत्मा) को जानता है, वह सबको जानता है।

न दंसणिस्स नाणं, नाणेणविणा हुंति न चरणगुणाः।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नात्थिऽमोक्खस्स निव्वाणं॥

जहाँ श्रद्धान (दर्शन) नहीं वहाँ ज्ञान नहीं होता, बिना ज्ञान के चारित्रगुण प्रकट नहीं होता, बिना चारित्र-गुण के मोक्ष की सिद्धि नहीं होती, और अमुक्त का निर्वाण नहीं होता।

सम्माइट्ठी सावयधम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।
विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो॥

सम्यग्दृष्टि श्रावक जिनोपदेशित धर्म का पालन करता है। जो उसके विपरीत करता है, उसे मिथ्या-दृष्टि जानो।

दाण-पूजा-सीलोपवास चउव्विहो सावयधम्मो

दानशीलता, गुणीजनों का पूजा-सत्कार, शील-सदाचरण और उपवास आदि तप श्रावक का चतुर्विध धर्म है।

जूयं-मज्जं-मंसं-वेसा,पारद्धि-चोर-परयारं।
दुग्गइगमणस्सेदाणि हेउभूदाणि पावाणि॥

द्यूत (जुआ), शराब, मांस, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्री (या परपुरुष) का सेवन दुर्गति के कारण हैं, इसलिए श्रावक इन सात पाप-व्यसनों को छोड़ देता है।

पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं॥

पांच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों का पालन करना ही गृहस्थ का संयमाचरण है।

एहु धम्मु जो आयरइ बंभणु सुद्दुवि कोइ।
सो सावउ, किं सावयहं अण्णु कि सिरिमणि होइ॥

इस धर्म का पालन करने वाला चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, वह ही श्रावक है, अन्यथा श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि जड़ी रहती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

णवि देहो वंदिज्जइ णवि य कुलो णवि य जाइसंजुत्तो ।
को वंदइ गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ।।

देह की वन्दना नहीं की जाती, कुल और जाति के कारण भी कोई वन्दन योग्य नहीं होता । गुणहीन की कौन वन्दना करता है ? चाहे वह श्रमण (साधु) हो या श्रावक ।

कम्मुणा बंभणोहोइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वईसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।

कर्म (अपने आचरण, कार्यों) से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है (जन्म से नहीं) ।

न वि मुंडएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो ।।

सिर मुंडालेने मात्र से कोई श्रमण नहीं हो जाता, मात्र ओंकार का जप करने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता, वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता, और कुश-चीवर धारण करने से कोई तापसी नहीं बन जाता ।

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेय य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ।।

व्यक्ति समता से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है, और तप करने से तापस होता है ।

हउं वरु बंभणु ण वि वइसु णउ खत्तिउ णवि सेसु ।
पुरिसु णउंसउ इत्थि ण वि एहउ जाणि विसेसु ।।

यह अच्छी तरह जान समझ ले कि न मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय, वैश्य और न शूद्र आदि अन्य कुछ । मैं पुरुष, स्त्री या नपुंसक भी नहीं हूँ । आत्मा एक मात्र आत्मा है--उसमें ये कोई भेद प्रभेद नहीं होते ।

अप्पा मिल्लिवि णाणमउ अवरु परायउ भाउ ।
सो छंडेविणु जीव तुहुं झायहि सुद्धसहाउ ।।

ज्ञानमयी आत्मा को छोड़कर अन्य सब भाव पर भाव हैं । इसलिए हे जीव ! (उपरोक्त) समस्त विकल्पों को छोड़कर मात्र शुद्ध आत्मस्वभाव का ध्यान कर ।

ण य कोवि देदि लच्छी, ण कोवि जीवस्स कुणदि उवयारं ।
उवयारं-अवयारं कम्मंपि सुहासुहं कुणदि ।।

इस जीवात्मा को न कोई लक्ष्मी आदि देता है, न उसका उपकार करता है । उसके अपने कर्म ही उसके उपकार-अपकार और सुख-दुःख के कारण होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं ।
णहि वत्थुदो बंधो, अज्झवसाणेण बंधोदु ।।

कोई भी वस्तु जीव का भला-बुरा नहीं करती, उसके अपने विकार भाव (अध्यवसान) ही करते हैं, उन्हीं के कारण कर्मबंध होता है, किसी वस्तु से नहीं ।

अप्पा कत्ता विकत्ता य सुहाणय दुहाणय

आत्मा स्वयं अपने दुःख-सुख का कर्त्ता और हर्त्ता है ।

रागो दोसो मोहो ए ए एत्थ तिय दूसण दोसा ।
रायो य दोसो य कम्मवीयं ।।

राग, द्वेष और मोह ही इस आत्मा के महान दूषण और दोष हैं, और राग एवं द्वेष ही कर्म के बीज हैं ।

जहाकडं कम्मं तहासि भारे

जैसा कर्म किया जाता है, उसका वैसा ही फल भोगना होता है ।

कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं

कर्म सदैव करने वाले के पीछे-पीछे चलते हैं ।

णाणं अंकुसभूदं मत्तस्स हु चित्त-हत्थिस्स

चित्तरूपी उन्मत्त हाथी को वश में करने के लिए ज्ञान अंकुश के समान है ।

णाणपदीओ पज्जलइ जस्स हियए विसुद्धलेस्सस्स

विशुद्ध परिणाम वाले हृदय (शुद्धचित्त) में ज्ञान-दीप सतत प्रकाशमान रहता है ।

जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया ।
जेण विणावि लोगस्स ववहारो सव्वहा न निव्वडई ।।

जितने भी वचनपथ हैं, उतने ही नयवाद हैं–जो कुछ भी कहा जाता है, वह किसी न किसी दृष्टि (नय) से कहा जाता है । इन नयविवक्षा के द्वारा ही अखिल जगत के समस्त व्यवहार चलते हैं ।

जावंतो वयणपहा, तावंतो वा नया विसद्दाओ ।
ते चेव य परसमया, सम्मत्तं समुदया सव्वे ।।

जो कुछ भी बोलने में आता है वह किसी न किसी नय (दृष्टि) से कहा जाता है । अलग-अलग रहने पर ये सभी मिथ्यादृष्टियाँ हैं, और परस्पर में समुदित (समन्वित) हो जाने पर वे ही सम्यक् दृष्टियाँ बन जाती हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जमणेग धम्मणो वत्थुणो, तदंसे च सव्व पडिवत्ती ।
अन्धव्व गयावयवे, तो मिच्छद्दिट्ठिणो वीसु ।।

जैसे हाथी को टटोलकर देखने वाले जन्मान्ध व्यक्ति उसके एक-एक अंग को ही पूरा हाथी मान बैठते हैं, उसी प्रकार अनेक धर्मात्मक वस्तु के विषय में अपनी-अपनी अटकल, उसके किसी एक पक्ष को ही लेकर, दौड़ाने वाले व्यक्ति उस एक अंश को ही सम्पूर्ण वस्तु मान बैठते हैं। वस्तु-स्वरूप अनेकान्त दृष्टि से ही सिद्ध होता है।

तस्स भुवणेकगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स

लोक के उस एक मात्र (अप्रतिम) गुरु अनेकांतवाद को नमस्कार हो।

णाणा जीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी ।
तम्हा वयणविवादं सगपरसमएहिं वज्जिज्जो ।।

लोक में अनेक जीव हैं, कर्म भी अनेक प्रकार के हैं, और प्रत्येक व्यक्ति की नाना प्रकार की उपलब्धियाँ होती हैं। अतएव अपने मत अथवा दूसरे मत के माननेवाले किसी भी व्यक्ति के साथ वचन-विवाद (वाद-विवाद) करना उचित नहीं है।

विवत्ती अविणीयस्स संपत्ती विणीयस्स य ।
जस्सेयं दुहओ नायं सिक्खं से अभिगच्छइ ।।

अविनीत (विनय रहित) को विपत्ति प्राप्त होती है और विनीत को सम्पत्ति—जिसने यह जान लिया, वही शिक्षा ग्रहण कर सकता है।

जे य कंते पिए भोए लद्धेवि पिट्ठी कुव्वई ।
साहीणे चयइ भोए से हु चाइत्ति बुच्चई ।।

जो व्यक्ति सुन्दर और प्रिय भोगों को प्राप्त करके भी उनकी ओर से पीठ फेर लेता है, सब प्रकार के स्वाधीन भोगों का परित्याग कर देता है, वही सच्चा त्यागी है।

समिक्ख पंडिए तम्हा पास जाइ पहे बहू ।
अप्पणा सच्चमे सेज्जा मेत्तिं भूयेसु कप्पए ।।

बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि दुष्कर्म-पाशों को भली भाँति समझकर स्वतन्त्ररूप से स्वयं सत्य की खोज करे और सब प्राणियों पर मैत्रीभाव रक्खे।

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो ।।

वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता, अवैर से ही वैर शान्त होता है—यही सनातन नियम है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो व पब्बता ।
असन्तेत्थ न दिस्सन्ति रत्तिखित्ता यथा सरा ।।

सत्पुरुष हिमालय पर्वत की तरह दूर से ही प्रकाशित रहते हैं । असत्पुरुष रात में फैंके गये बाण की नाईं दिखाई नहीं देते ।

कयिरज्जे कयिराथेनं दल्लूहमेनं परक्कमे ।
सिथिलो हि परिब्बाजो भिय्यो आकिरते रजं ।।

जिस काम को करना है, तो उसके करने में दृढ़ पराक्रम के साथ जुट जाय । ढीला-ढाला सन्यासी अधिक धूल उड़ाता है, सिद्ध कुछ नहीं करता ।

न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति ।
एकन्तं निन्दितो पोसो एकन्तं वा पसंसितो ।।

ऐसा व्यक्ति कि जिसकी या तो सर्वथा प्रशंसा ही प्रशंसा होती हो, अथवा निन्दा ही निन्दा होती हो, न कोई हुआ है, न है, और न कभी होगा ।

यो च पुव्वे पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति ।
सो मं लोकं पभासेति, पब्भा मुत्तो व चन्दिमा ।।

जो व्यक्ति एक बार भूल करके फिर भूल नहीं करता, वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति लोक को प्रकाशित करता है ।

तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा विवज्जणा बालजणस्स दूरा ।
सज्झाय एकंत निषेवणाय सुत्तत्थ संचिन्तणया धिईय ।।

गुरुजनों एवं वृद्धों की सेवा, मूर्खों से दूर रहना, एकाग्रचित्त से सत्साहित्य का अभ्यास एवं चिन्तन-मनन करना और अपने चित्त को धीर बनाना ही निश्रेयस–कल्याण का मार्ग है ।

आरोग परमालाभा संतुट्ठी परमं धनं ।
विस्सास परमा ञाती निब्बाणं परमं सुखं ।।

नीरोगता सबसे बड़ा लाभ है, सन्तुष्ट रहना परम धन है, विश्वास सर्वश्रेष्ठ बन्धु है, और निर्वाण सर्वोपरि सुख है ।

लवणसमो नत्थि रसो, विन्नाणसमो बंधवो नत्थि ।
धम्मसमो नत्थि निही, कोहसमो वईरिओ नत्थि ।।

संसार में नमक के समान कोई अन्य रस नहीं है, विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) के समान कोई बन्धु नहीं है, धर्म के समान अन्य कोई निधि नहीं है, और क्रोध के समान अपना कोई शत्रु नहीं है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विगिंच कोहं अविकंपमाणे

क्रोध पर विजय पाने के लिए अकंपान वृत्ति का अवलंबन लो।

खमासूरा अरहन्ता

जो क्षमाशूर होते हैं वे ही अर्हंत होते हैं।

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्तिमे सव्वभूएसु, वैरं मज्झं ण केणवि ॥

मेरा सब जीवों के प्रति क्षमाभाव है, सब प्राणी मुझे क्षमा करें, प्राणीमात्र से मेरी मैत्री है, वैर किसी से भी नहीं है—ऐसी भावना रखो।

मा नो द्विक्षत कश्चन्

हम किसी से भी द्वेष न करें।

नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय

कोई भी किसी दूसरे के लिए दुःखकी इच्छा न करें।

सव्वे सत्ता अवेरिनो होन्तु मा वेरिनो

सभी व्यक्ति अवैर बनें, कोई भी किसी के साथ वैर न रखे।

सव्वे सत्ता भवन्तु सुखवत्ता

जगत के सभी प्राणी सुखी हों, सुखी रहें।

★★★

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनवाणी

भगवान तीर्थंकर का दिव्य उपदेश अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य नामक दो भागों में विभक्त है।

अंगप्रविष्ट श्रुतागम १२ अंगों में विभाजित है—१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग, ६. ज्ञातृधर्मकथांग, ७. उपासकाध्ययनांग, ८. अन्तकृद्दशांग, ९. अनुत्तरोपपातिकदशांग, १०. प्रश्नव्याकरणांग, ११. विपाकसूत्रांग, और १२. दृष्टिप्रवादांग।

बारहवें अंग दृष्टिवाद के ५ भेद हैं—१. पूर्वगत, १. परिकर्म, ३. सूत्र, ४. चूलिका, और ५. अनुयोग।

पूर्वगत के १४ प्रभेद हैं—१. उत्पादपूर्व, २. अग्रायणीय, ३. वीर्यानुवाद, ४. अस्तिनास्ति-प्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्मप्रवाद, ८. कर्मप्रवाद, ९. प्रत्याख्यान, १०. विद्यानु-वाद, ११. कल्याणवाद, १२. प्राणावाय, १३. क्रिया विशाल, १४. लोकबिन्दुसार।

चूलिकाएं ५ हैं--जलगत, स्थलगत, मायागत, रूपगत और आकाशगत।

अनुयोग के दो भेद हैं—मूलप्रथमानुयोग और गंडिकानुयोग।

अंगबाह्य ज्ञान १४ प्रकीर्णकों में विभाजित है—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुंडरीक, महापुंडरीक और निषिद्धिका।

सम्पूर्ण जैन धार्मिक साहित्य विषयानुसार चार अनुयोगों में वर्गीकृत है—प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

प्रथमं चरणं करणं द्रव्यं नमः।

5275

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शारदास्तवन

संपइ-सुह-कारण कम्मवियारण, भव-समुद्द-तारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्सामि सत्ति पयासमि, सग्ग-मोक्ख-संगम-करणं ।।

वीर हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतम के मुख-कुंड ढरी है ।
मोह-महाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर करी है ।।
ज्ञान पयोनिधिमांहिरली, बहु भंग-तरंगनिसों उछरी है ।
ता शुचि शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुलिकर शीश धरी है ।।

या जग मंदिर में अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी ।
श्री जिनकी धुनि दीप शिखासम, जो नहिं होत प्रकाशन हारी ।।
तो किस भांति पदारथ-पांति, कहाँ लहते रहते अविचारी ।
या विधि संत कहैं धनि हैं, धनि हैं जिन-बैन बड़े उपकारी ।।

जा वाणी के ज्ञान से सूझें लोकालोक ।
सो वाणी मस्तक चढ़ो सदा देत हूँ धोक ।।

ज्योति निकुंज
चारबाग, लखनऊ—१
दीपावलि २५०१